International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 1; Issue 12; December 2016; Page No. 75-77

कृष्णालता यादव कृत 'चेतना के रंग' लघुकथा संग्रह में व्यक्त बंधुत्व की भावना

सुमन बाला

Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana, India

Introduction

कृष्णालता यादव एक बहुत सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं। इस लघुकथा संग्रह में विश्व प्रसिद्ध लोगों से लेकर ग्रामीण जीवन तक का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। कृष्णालता यादव ने गांवों में पनपता पारस्परिक प्रेम, द्वेष, छुआछूत, नारी, अंधविश्वास, अहंकार के प्रति लघुकथा संग्रह लिखा है। इसमें भाईचारे की भावना को भी दर्शाया गया है, जो कि समय असमय एक दूसरे की प्रति समर्पित है। लेखिका ने राजनीतिक तंत्र को सामाजिक बंटवारे का उत्तरदायी माना है। वह देश के नेताओं को जल्लाद समझता है। जो जनता के नाम पर भाषण देते हैं, लेकिन जन के लिए उनके पास कोई सुधार कार्यक्रम या योजना नहीं है। वह देश के इस प्रजातंत्र के खिलाफ है जहां जन के लिए कोई संभावना नहीं है। वह इन नेताओं को खेदड़ने की उतेजना अनुभव करता है। 'अभी–अभी मिले इस पत्र को पढ़कर वह बाजार जाएगी। देख–परखकर अच्छी किस्म की ऊन लाएगी। बुनाई विशेशांक पत्रिका जुटाएगी और सुंदर सा डिजाइन डालकर स्वेटर बना भेजेगी। स्वेटर पाने वाले दो–चार बार उसी प्रशंसा में कसीदें पढ़ेंगे और फिर अगली चाहत के मौसम तक खामोशी छाई रहेगी।

इस बार बिमला ने भी खत लिख भेजा– "आंख का ऑप्रेशन करवा रही हूँ एक जने का आना जारूरी है।"

सच यह है कि इस बेमौसमी पत्र की आंधी मौसमी पत्तों को उड़ा ले गई कहीं दूर, बहुत दूर। [1] जब सारा परिवेश ही भ्रष्ट हो तो अपनी भावनाएं अकेली अहमियत बहुत बड़ी और महत्वपूर्ण नहीं लगती। इन परिस्थितियों की असंगति से लेखिका कृष्णालता यादव मुक्त होना चाहती हैं। "रज्जो, तुमने रॉकी को कुछ खिलाया है ?"

"हां, बीबीजी। रात को दो रोटियां बच गई थीं। मेरा व्रत है। अन्न का अपमान न हो यह सोचकर रोटिया ले आई।"

"खूब सोचा। तुम्हे पता होना चाहिए, मैं इसे कभी बासी–रूखी चीज नहीं खिलाती। इसे कुछ हो गया तो इलाज के पैसे तुम्हारी पगार से काट लिए जाएंगे।"

घर लौटते ही रज्जो देवमूर्ति के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गइ।" [2]

स्वयं लेखिका के वक्तव्य में कहा गया है कि आज के व्यक्ति की लड़ाई की सबसे दर्दनाक सच्चाई यह है कि वह लड़ाई किसी बाहरी शक्ति से नहीं– अपने ही संबंधियों से है और इसलिए यह ज्यादा यंत्रणादायक, ज्यादा त्रासद है। यही त्रासदी स्वतंत्र चिंतन पर अंकुश लगाती है।

जैसे–''अरे भाई, भाव–मोल उनके मुंशी–मुलाजिम करेंगे। वहाँ क्या घटवारी–हटवारी का धन्धा है ?...धूप–छाँह–सी बातें होंगी...नरम–नरम उनका रूख पहचानना होगा...हमेशा 'जी जी' की जलेबियाँ छाननी होंगी, जिसका छनौटा मेरे पास है। आप अपनी जुबान पर लगाम लगाए रखिएगा। मैं सारा मामला निबट लूँगा। मेरा नाम घोलट झा है। घोलट! यह इंजन आपको सीधे सही स्टेशन पर जा खड़ा करेगा। बाबू साहब लोगों के आँखे नहीं, कान होते हैं, और उनके कान तक आवाज पहुँचने के लिए जुबान में गुड़–शक्कर चाहिए। यह कला सबों के पास नहीं होती है। मुझे दरबार के सारे भेदभाव मालूम हैं। आप बेफिक्र रहिए। वहाँ किस औकात और किस तजरबे से गप ही जाती है, या घोलट झा जानता है कि माल खरीदने के वक्त जुबान पर मधु का लेप चाहिए जो क्रेता और विक्रेता के बीच साख बनाता है और वही साख करोबार में विश्वास का पुल बन जाता है, जिसके ऊपर से हाट–बाजारे की गाड़ी धड़ल्ले से दौड़ने लगती है।'' [3]

आज की राजनीति अर्थ के सहारे गतिमान है। अर्थ ने व्यवस्था को अपने प्रभाव में जकड़ लिया है। अर्थ के अभाव में कोई भी काम संपन्न नहीं होता। वर्तमान परिवेश में जीवन शैली अर्थ की अंधी दौड़ में दौड़ रही है। अर्थ और प्रकृति ने गरीब और अमीर के बीच खाइयों को और पाट दिया है, जो लगातार बढ़ती जा रही है। देश काआर्थिक ढांचा दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। भूख, गरीबी,बेरोजगारी और महंगाई ने आम जन की कमर तोड़ दी है। उसका जीना दूभर हो गया है। आर्थिक विशमता ने अनेक समस्याएं पैदा कर दी हैं। राजनीति की पंगुता और सब्रग्राही शोषण एवं भ्रष्टाचार ने समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा और अधिक विषम एवं जटिल बना दिया है। अर्थ नीति के क्रूर, दुश्चक्र में आम जन पिस रहा है और कृत्रिमता के भयावह साम्राज्य में पला आज का व्यक्ति मानवता का उपहास सा प्रतीत हो रहा है। अर्थ में जुड़े विचारों को काव्य में अभिव्यपित करना अनिवार्य है और कृष्णालता यादव ने इस पर खूब कलम चलाई है–'इन चौकियों के हाकिम की अच्छी साख और धाक बनी रहती है। पर जोखिम भी कम नहीं। फिर भी बहती गंगा में उन्हें पुण्य का लाभांस मिल ही जाता है। लाख लोग अपनी शेखी बघारते रहें, शक की सुइयाँ घुमाते रहें. . .ऊपर सिर खुजलाकर और नीचे पाँव में मोजे डालकर यहाँ के बेरोजगार युवक अपना रोजगार बैठा ही लेते हैं, हाकिम खुश, इलाका खुश और यहाँ के शार्गिद खुश . . . सभी खुश ही खुश! [4]

उसका स्वयं की जीवन सभी विलासिता पूर्ण साधनों के कारण उदास, खिन्न और विपन्न है। अधिक से अधिक अर्थ प्राप्ति की प्रवृति ने मनुष्य को निज हितैशी व धूर्त बना दिया है। मानवीय जीवन के मूल्यों के विभिन्न पक्षों को अर्थ ने क्षति पहुंचाई है। आज के युग मे तो राजनैतिक धार्मिक नेताओं व संस्थाओं तक को अपने पंजे में जकड़ लिया है। लेखिका कृष्णालता यादव ने समाज का वर्ग विभाजन करने वाली असंगत आर्थिक व्यवस्था पर चिंता जताई है। संपन्न वर्ग की विकृत मानसिकता का सशक्त चित्रण करती है। वह अपने को व्यवस्थाओं में कहीं नहीं पाता है–नाकारा, प्रदर्शन प्रिय जैसे विश्लेषण उसके दिमाग से सदा चिपके रहते हैं। जबकि, निर्धन व्यक्ति जहां तक आंखें जाती हों– लोग और बेहाल

दुनिया ही दिखाई देती हो तब वह पैरों तले जमीन नहीं पाएगा। लेखिका की यह अस्वीकृति ही उनके जिंदा होने को प्रमाणित करती है – यही बेचैनियों लेखिका के असली बिंदु उभारती हैं। जैसे– 'उधर कुमार साहब नाव में खर्राटे भर रहें हैं। जलबयार और भी उनकी नींद को पोख्ता कर रही है। आखिर वे इस खाली में करते भी क्या ? न कुछ पढ़ सकते थे और न इन लोगों के बीच कोई बातचीत हो होती, बस वही घिसी–पिटी वैष्णव और साकट वाली बहस। अच्छा है कि रातभर के जागरण को वे अभी पूरा कर रहे हैं। नाव समय पर घाट लगेगी ही। कहनेवाले यूँ कह रहें हैं कि कुमार साहब राजा रईस, इन्हें दिन–रात सोना और खाना है। लेकिन इसके बावजूद और कुछ है जिसका सबों को पता नहीं रहता। हरेक जन का अपना घेरा होता है, उसकी धरती और उसका आकाश जिसके बीच वह अपनी सुविधा तथा गति से जीता रहता है फिर कुमार साहब के बारे में पूछना ही क्या ? वे अपनी विशिष्टता के साथ विशिष्ट गति में चलते रहें हैं। उनके विरूद्ध कुछ भी कहना, कहनेवालों की नासमझी है। [5]

लघुकथा का पात्र निरपत कर्म को अपनी अंतिम संभावना मान बैठता है। संपन्न व्यक्ति ने बहुत ही निर्लिप्त तसल्ली से अपने को सारी तकलीफों से अलग कर लिया है। वह सिर्फ, अपने को ही चाहने और अपनी ही चिंता करने की स्वार्थपरता तक पहुंच गया है। सारे अपमान के बोध को बार–बार नजरअंदाज करके धन संग्रह करते रहना, सारी चिंताओं–दुश्चिंताओं को भुलाकर पड़े–पड़े जुगाली करते रहना यथार्थ जीवन–स्थितियों से उसके पलायन को जाहिर करता है। इस विशमता को इस प्रकार दर्शाया है– 'कुमार साहब सेठजी की मनःस्थिति को भाँपते जा रहे हैं. . .अंदर से बड़े ही डरपोक एवं शंकालु स्वभाव वाले जन...एक–एक पाँव सोच–समझकर आगे बढ़ाते हैं...न इधर न उधर–बीच लीक पर। अभी वे बधवा के बीच कैसे छिपे रहेंगे ? लम्बा सफर है। आँखों से आँखे चार होंगी ही। वह कैसे नहीं उससे बोल पाएँगे ? कुछ टोकना–पूछना तो होगा ही, नहीं तो बेवजह उससे अड़ार मोल लेना है। धार दोनों तरफ बनी है। कोई दूसरा उपाय नहीं सूझता है...'जाहि विधि राखे राम वाहि विधि रहिए'। सेठजी अथाह पानी में अपना पाँव बढ़ा देते हैं। क्या किया जाए...गाल फुलाकर अलग–थलग बैठना भी ठीक नहीं–यह और आफत मोल लेना होगा। [6]

'व्यक्ति के लिए मात्र जीवनयापन ही समस्या नहीं होती है बल्कि हाशिए पर पड़े समाज को सदर पर उतारकर अपने खाना और दूसरों को खिलाना, अपने जीना और दूसरों को जिलाना भी एक समस्या है। यही मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या और सबसे बड़ा काम है। सुख का अमृतकुंड यहीं छिपा है। यही मनुष्य का यापन है। इससे अच्छा पढ़ाई–लिखाई का कोई दूसरा मुकाम नहीं बनता है। वह अपने गुरूबाबा पंडित सारस्वतानंदजी से इस विषय पर क्या बहस करें? गीता की समक्षता जैसी उसकी पहुँच नहीं कि जब मान चाहे तब उनसे भिड़ जाये। उसे निस्संकोच बिना किसी सवाल के अपने निर्णय पर उतर जाना है। [7]

लेखिका कृष्णालता यादव को पद्धतियों के सारे खोखलेपन का एहसास है– और वह एक रचनाकार की ईमानदारी इसी में मानते हैं कि वह इस खोखलेपन को स्वीकार न करे– 'भीड़ में एक अकेले साहस का भी महत्व होता है–जनता नहीं सुनती, न सुने, राज्य के लिए उसका कोई अर्थ नहीं है, न हो। उसके आंतरिक मन आत्मा में इस सच्चाई को एक संगति है। एक शब्द में लेखिका की अनास्था झूठ के किसी भी रूप के प्रति है, सतही प्रदर्शनों के खोखलेपन के प्रति है– स्पष्टतः इस सच्चाई अंतराल में चुनौती है– चुनौती इस बात की है कि हम सच जानते है और उसे धारे रहेंगे। ऊपर से हम जो समर्पित दिखते हैं– वह किसी विवशता के कारण नहीं, वह अपनी अनुभूति को जागृत करके उसे एक सहज प्रत्यक्ष साक्षीयुक्त रूप देने के लिए। 'एक घड़े ने दूसरे से कहां – बन्धु! हम एक कुंम्भकार के हाथों गढ़े गए, एक ही अलाव में पके। परन्तु भाग्य देखिए, मैं विष को सम्भाले हुए हूँ और तुम अमृत से भरपूर हो अर्थात् तुम नव आशाओं के वाहक हो और मैं...." कहते–कहते उसका स्वर कांप गया।

श्रोता कुंभ बोला – "मित्रवर! भाग्य को बीच में मत लाइए। अवसाद से मुक्ति पाने का सूत्र अपनाइए। इस सूत्र के तन्तु शंखनाद करते हैं – सब दिन होत न एक समान।" [8]

मनःस्थिति के पीछे एक मनोविज्ञान है जिसे कृष्णालता यादव की सहभागी मर्मी दृष्टि पकड़ लेती है–''उन्हें कोई तड़क–भड़क वाला घर नहीं चाहिए, बस, बैठने और सोने के लिए एक कमरा, रसोईघर, शौचालय तथा नहाने–धोने वास्ते एक चापाकल। डेरा फूस–टट्टी का ही क्यों न हो, हरज नहीं।'' ''तो क्या उन्हें मेरी कुटिया पसन्द आएगी ? अगर पसन्द है तो वे यहाँ आ जाएँ। मैं स्कूल में अपना डेरा ले जाऊँगा।'' इस पर निरपत ने खुश होते हुए उनसे पुछा, ''इसके लिए कितना किराया देना होगा मास्टर साहब!'' शर्माजी निरपत की इस बात पर थोड़ी देर चुप होते हुए ठठाकर हँस पड़े, ''किराया! अरे, किराया तो बहुत है भाई, आपके एसो साहब उतना दे सकेंगे ? मेरी कुटिया आगरा के ताजमहल से भी अधिक महँगी है। अब बताइए ?'' अमीन साहब ने झट बात को चपोतते हुए उनसे सविनय कहा, ''आपकी कृपा ही सर्वोपरि है मास्टर साहब! यही बहुत कि आपने अपने यहाँ रहने की स्वीकृति दे दी।'' शर्मा जी ने फिर कहा, ''भाड़ा–किराया किसी दूसरे के यहाँ चलता है। मेरे यहाँ प्रेम और श्रद्धा का व्यापार है। अगर आपके हाकिम इस व्यापार में शरीक हो सकें तो उनका स्वागत है।'' अमीन साहब ने पूरी तरह शर्मा जी की ऊँचाई की पैमाइश कर ली। निरपत ने भी उनके आकार को आँक लिया। [9]

जब निकटतम संबंधों में युद्ध छिड़ता है तो यह विरोध एक नैराश्य और अपरिमित इच्छाहीनता में बदल जाता है क्योंकि निजी अभिशाप के प्रतिकार का अर्थ होता है एक असीमित विघटन जिसके लिए साधारणतः मानव हृदय तैयार नहीं कर पाता, अपने को। लेकिन हमारा कोई संबंध नहीं होता, उनकी छोटी–सी चुनौती भी हम स्वीकार कर लेते हैं। अपनों से युद्ध हमें उतेजित नहीं करता, चुप करता है। लेखिका कृष्णालता यादव अत्यंत संवेदनशील हैं।

अतः आत्मा अस्तित्व–पीड़ा से, मुक्ति पाने की तलाश में भटकती तो है लेकिन यह भटकन–यह खोज प्रत्यक्ष तौर पर हामरे सामने उसकी स्वतंत्रता की चेतना का कोई आयाम सामने नहीं लाती वह तो विकृतियों में खंडित न होकर, उन विकृतियों के पीछे सुगबुगाती हुई तकलीफ को जाहिर भर कर देती है।

सामाजिक व्यवस्था, परंपरागत और प्रचलित सामाजिक संबंधों को तोड़ता हुआ कृष्णालता यादव का स्वतंत्र संबंध–बोध है। हालांकि आम जन के इन नए स्थापितसंबंधों में भी यथार्थ की कडुवाहट भरी और दबाव व प्रतिबंधों की यंत्रणा देती हुई स्थितियों का बार–बार हांट करता हुआ अहसास भी है लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण बात यह है कि सारे कसैले अनुभवों के बावजूद कहानी में फिर से लौट कर –उन्हीं मर्यादाओं को स्वीकार करके प्रतिष्ठा पाने का मोह नहीं है– वे अनुभवों को स्वीकार करते हैं– सामाजिक आतंक से त्रस्त भी होते हैं फिर

भी उनके प्रतिष्ठाओं और मर्यादाओं के प्रति एक खुली हुई अवज्ञा और उपेक्षा का भाव पकड़ा जा सकता है जो उनके परंपरा के खिलाफ साफ बगावत की तो नहीं लेकिन एक मानसिक अलगाव की स्थिति को रेखांकित करता है।'बिना कांटों वाली झाड़ी अपने पास उगी झाड़ी को देखकर व्याकुल थी– "ओह! रोम–रोम कांटों से भरपूर। यह क्या परहित साधना करेगी ? हाथ लगाना तो दूर, लोग पास आने से भी कतराएंगे क्योंकि यह किसी की उंगली छेदेगी, किसी का चीर फाड़ेगी। यह कैसा पड़ोस मिला।"

कुछ दिन बाद कांटों वाली झाड़ी उससे कह रही थी– "बहन, राहगीरों ने दांत कुरेदने के लिए तुम्हारे तिनके तोड़े, पशुओं ने पत्ते चट किए, बच्चों ने बेखटके कच्चे ही फल झटक लिए। देखो, वंश चलाने के लिए एक भी फल शेष नहीं। क्या सादगी की यही सौगात मिली?" [10]

लेखिका ने भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति में तीव्रता दिखाई है–जनश्रुति है कि कभी वैशाख की चिलचिलाती धूप में राजा साहब अपने मुलाजिम के साथ बाहर का नजारा देखने निकले थे। मुलाजिम उन्हें छाता लगाए हुए था। अचानक उनकी नजर दूर खेत में हल चलाते एक हलवाहे पर पड़ी। इस पर उन्होंने अपने मुलाजिम से पूछा, ''इतनी धूप में वह कौन है जो हल चला रहा है?'' मुलाजिम ने जवाब दिया, ''हलवाहा है सरकार!'' राजासाहब चकित होते हुए बोले, ''हलवाहा! अरे वाह, क्या खुब बनाया है भगवान् ने हलवाहा भी। नहीं तो क्या मजाल कि इस धूप में कोई जन हल चला ले।'' उनकी इस बात पर मुलाजिम चुप हो गया और उसने राजासाहब की समझ को जाना कि हलवाहा जन नहीं...कोई फरिश्ता, कोई जानवर, कोई भूत–प्रेत या कोई अपर जीव होता है। इस तरह की बहुत सारी कहानियाँ यहाँ के लोगों के बीच प्रचलीत हैं, जिन्हें सुनकर हँसते–हँसते पेट में बल पड़ने लगते हैं। [11]

लेखिका कृष्णालता यादव ने साहित्य को समाज से जोड़ने का आग्रह करते हुए काव्य रचना की है। आपका मूल उद्देश्य साहित्य– कर्म पर केन्द्रित रहा है। जीवन के राग–विराग, हर्ष–विशाद एवं सुख–दुख के साथ–साथ समाज सापेक्ष भावना को इन्होनें अनिवार्य माना है। अधिकांश लेखिकाताएं लेखिका के साहित्यिक आयामों को स्वतः सिद्ध करती है।

'अकेलेपन से उकताया ज्ञान प्रकाश धीमे कदमों से टहल रहा था। मन उधेड़बुन में लगा था। यकायक छत पर वानर टोली को देखा। कौतुक सिर उठाने लगा। शरारत अंगड़ाई लेने लगी।

उसने केलों का गुच्छा उठाया। दो–तीन केले बन्दरों की ओर उछाल दिए। नर–मादा व बच्चों में छीना–झपटी मच गई। "खीं–खीं", "खों–खों" की आवाजें गूंजने लगीं। ज्ञान प्रकाश के दृश्य लोभी नेत्रों को सुख का आभास हुआ। एक–एक कर वह केले उछालता रहा। छीना–झपटी की लीला चरम पर थी। वह तलियां बजाता रहा, खिलखिलाता रहा। लंगड़ाते, कराहते, लहूलुहान बन्दरों की आंखें में अनेक प्रश्न थे। अब उसे अपनी आदमियता पर तरस आ रहा था। [12]

निष्कर्षः

कहा जा सकता है कि संबंधों में भावनाओं को डुबोना तो चाहती है, परंतु स्त्री पुरुष के दायरों में बंधे संबंधों और उनकी मर्यादा से नफरत करता है। स्वतंत्र–संबंधों की स्थापना आदि की कुछ जीवंत अनुभव प्रदान करती है। उनकी सारी खामियां भी, उनके बीच आने वाले खतरे भी स्वीकार है–जीवंतता और अनुभव की स्वतंत्रता के लिए ही वह बहुत अर्से के बाद भी अपने पुराने संबंधों के साथ जीने की एक तीव्र इच्छा को महसूस करता है। हालांकि अब समय का तकाजा है कि अब व्यवस्था और वर्जनाओं से टकराने की न कोई अहमियत बाकी है और न ही प्रतिष्ठाओं को ठुकराने का वह पुराना साहस। लेकिन बावजूद इसके वह झूके हुए, जन के रूप में अपनी कल्पना नहीं करना चाहता–उसका यह हट अमहत्वपूर्ण नहीं है इसमें चेतना में मिली हुई आजादी के लिए टकराने की मनःस्थिति के तेवर अभी शेष है।

संदर्भ सूची

1. कृष्णलता यादव, चेतना के रंग, पृ0 63
2. कृष्णलता यादव, चेतना के रंग, पृ0 18
3. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 27
4. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 97
5. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 89
6. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 64
7. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 212
8. कृष्णलता यादव, चेतना के रंग, पृ0 19
9. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 171
10. कृष्णलता यादव, चेतना के रंग, पृ0 59
11. कृष्ण लता यादव 'चेतना के रंग' पृष्ठ 46–47
12. कृष्णलता यादव, चेतना के रंग, पृ0 22